P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-8* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

मणिमधुकर के नाटकों में लोकतत्त्व

अंजू सिंह
अध्यापिका,
हिंदी विभाग,
खान्द्रा कॉलेज,
खान्द्रा

सारांश

मणिमधुकर बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। वे कवि और कथाकार तो हैं ही मगर एक चर्चित नाटककार के रूप में भी हिंदी नाट्य साहित्य में इनका महत्वपूर्ण स्थान हैं। 'रसगंधर्व' से लेकर 'खारी बावली' तक एक फैला हुआ नाट्य संसार हैं। उनके नाटकों में लोकधर्मिता एक खास वैशिष्ट्य है। लोक के प्रति आस्था, विश्वास, ईमानदारी और अनुकरण से लोकधर्मिता पैदा होती है। स्वाभाविक रूप में लोक कला उसमें स्पंदित होने लगती हैं। इनके नाटको में लोकधर्मिता का क्षेत्र विस्तृत है। उनका अवलोकन, अनुशीलन, विश्लेषण तथा मूल्यांकन इसलिए जरुरी है कि समाज परिवर्तन के साधन के रूप में मणिमधुकर ने इनका प्रयोग किया हैं।

मुख्य शब्द : लोक, लोकतत्व, लोकधर्मिता, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकभाषा।

प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी नाट्य परंपरा का प्रारम्भ भारतेंदु युग से माना जाता है। भारतेंदु मूलतः अपने नाटकों में लोकपरम्पराओं का सन्निवेश किया हैं। किन्तु जयशंकर प्रसाद के नाटको में इस तत्त्व की कमी के कारण वह मंचीय कम पाठ्य अधिक बनता गया। अगर नाटक को पंचमवेद के रूप में स्वीकार गया है तो इस विचार के केंद्र में लोक सम्पृक्ति को ध्यान में रखा गया है। आगे चलकर धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, सफदर हाशमी तथा मणिमधुकर जैसे नाट्यकारों का ध्यान उस तरफ गया और इन नाटककारों ने अपने नाटकों में सनिविष्ट कर नाटक को लोकप्रिय बनाया।

9 सितम्बर 1942 को मनीराम शर्मा अर्थात मणिमधुकर का जन्म राजस्थान के चुरू जिले में राजगढ़ तहसील के 'सेऊवा' नामक गाँव में हुआ था। वे हमेशा विचारों की स्वतंत्रता को तार्किकता के साथ, लेकर चले हैं। व्यवस्था के प्रति सूक्ष्म दृष्टि रखनेवाले मणिमधुकर की रचनाओं में स्वातंर्त्योत्तर भारत की तमाम व्यवस्थागत परिवर्तन की आहट अगर हैं तो इसका कारण उनकी प्रखर व्यवस्था दृष्टि ही हैं। वे सच्चे रंगकर्मी थे, लोकनाट्य एवं रंगमंच की समृद्धि के लिए उन्होंने अविरत परिश्रम किया। उनके प्रसिद्ध नाटक, रसगंधर्व –1979, दुलारीबाई–1978, बुलबुल सराय–1978, खेला पोलमपुर–1979, इकतारे की आँख–1980, बोलो बोधिवृक्ष, खारी बावली तक के सभी नाटको में लोक जीवन, व्यवहार, संघर्ष सबकुछ समकालीन बोध के साथ उपस्थित है। सभी नाटकों में रचनाकार का उद्देश्य लोक–सत्य को उद्घाटित करना रहा है। लोक उनके यहाँ हाशिये का नहीं, केंद्र का पर्याय हैं। मणिमधुकर का रंगकर्म लोकनाट्यशैली एवं पारंपरिक नाट्य युक्तियों का सम्मिश्रण है। उनके नाटकों का कथानक लोकतत्त्वों और लोक–गाथाओं से निर्मित है। उनके अनुसार–"रंगमंच या नाटक को लोक से जुड़े रहना है तो हमें उसे लोक–परंपरा से जोड़कर चलाना होगा। संस्कृत नाटकों की दुनिया अब प्रासंगिक नहीं है, वह संसार हमारा नहीं रह गया है, वह बनावटी सा लगता है। उगमराज के नाटक बहुत गहरी मार करते हैं और बेपर्दा बेचैनी पैदा करते हैं। यह सुविधा राजस्थानी भाषा में है और मैंने उन्हें हिंदी में लाना चाहा है। हमारी लोकधर्मी परम्परा नहीं मर सकती, चाहे टी० वी० आ जाये, चाहे विडियो या फिल्में। लोक–परम्परा जीवित रहेगी। हम अपनी कहानी को उस तरह जरुर कहेंगे। मैंने उन्हें अपने समय के साथ लिया है। ये वे जड़ें हैं जहाँ से मेरे नाटक निकले हैं, जहाँ से मैंने रस ग्रहण किया हैं।"[1]

प्राचीन काल से ही लोक और लोकतत्त्व का हमारे साहित्य में बड़ा महत्व रहा है। शब्दकोशों में लोक शब्द के अलग–अलग अर्थ मिलते है। इनमे से दो अर्थ अधिक प्रचलित हैं। 'हिंदी साहित्य कोश' से त्रिलोक या चर्तुलोक का ज्ञान होता है जबकि अन्य कोशो में इसका अर्थ 'जनसामान्य' लिया गया है। यह जन साधारण या आम जनता का बोध कराता है। दूसरी ओर लोकतत्त्व सामान्य जन के क्रिया व्यवहार के अंग हुआ करते हैं जिसमें केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि

प्रकृति, व्यवहार और भाषा भी आती है। चूँकि साहित्यकार का संबंध भी इसी लोक से होता है। अतः लोक की परम्पराएँ, लोकनृत्य, लोकगीत, लोक में प्रचलित रीति–रिवाज जब लोक भाषा में लिपिबद्ध होते है तो उस साहित्य में लोकतत्त्व स्वतः समाहित हो जाते हैं। दृश्य–श्रव्य विधा होने के कारण नाटक लोक–जुड़ाव एवं जनता के काफी समीप रहा है। अतः नाटकों में लोकधर्मिता का प्रायः समावेश रहा है। आचार्य भरतमुनि की दृष्टि में अगर नाट्य को पंचम वेद भी माना गया है तो उसका कारण लोकधर्मिता की प्रवृति ही है। जो स्वाभाविक है वह लोकधर्मी है तथा जो कला द्वारा निर्मित है वह नाट्यधर्मी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–"लोकधर्मी और नाट्यधर्मी रूढियां भिन्न भिन्न परम्पराओं का संकेत करती हैं परन्तु नाट्यधर्मी रूढियों का भी मूलस्त्रोत लोकधर्मी रूढ़ियां ही है।"[2] विवेच्य नाटककार मणिमधुकर की नाट्यकृतियों में अभिव्यक्त लोकधर्मिता को उपरोक्त सन्दर्भ में ही विवेचित करना उचित होगा। जब हम किसी रचना में मोजूद लोकधर्मिता की बात करते है तब हम उस रचना में मोजूद लोकतत्त्व की ही जाँच कर रहे होते है।

मणिमधुकर आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य के इतिहास में एक ऐसे चिंतनशील रचनाकार हैं जो अपने समय और समाज के प्रश्नों से लगातार जुझते रहे हैं। परिवर्तित लोक संवेदना और लोक में उपस्थित विसंगतियों के प्रति वे सचेत नजर आते हैं। जब हम उनके नाट्य विचार पर बात करते हैं तो पाते हैं कि प्रायः सभी नाटकों की रचना प्रक्रिया में उनकी आँखों देखी लोक समस्याएँ केंद्र में रही हैं। लोक उनके यहाँ हाशिये का नहीं केंद्र का पर्याय है, जिसमें लोक जीवन, व्यवहार, संघर्ष सबकुछ समकालीन बोध के साथ उपस्थित है।

'रसगंधर्व' मणिमधुकर की नाट्य यात्रा का वह प्रस्थान बिंदु है जहाँ से उनकी नाट्य यात्रा प्रारम्भ होती है। रसगंधर्व अपने देश के सामाजिक और राजनितिक जीवन की विसंगतियों को चित्रित करनेवाला प्रभावशाली नाटक है। कथ्य एवं शिल्प के विविध प्रयोग के स्तर पर संपूर्ण नाटक में के कई–कई कथा प्रसंग है, जो लोककथाओं से लिए गए है। नाटक में वर्तमान के राजनीतिक भ्रष्टाचार और व्यवस्था की समस्त कमजोरियों को केंद्र में रखा गया है परन्तु कथानक का केंद्र यशस्वी राजा भोज की प्रजा है। पूर्वाद्ध में चार कैदी अपने दुख और विवशता कि बात करते है। तभी रेडियों पर खबर आती है।" बगावत को कुचल दिया गया है। पचपन करोड़ लोग गिरफ्तार किये जा चुके हैं। उनपर फौजी अदालत में मुकदमें चलाए जायेंगे। विद्रोह की समाप्ति पर राजा भोज ने जनता के मुकदमें के प्रति आभार प्रकट किया है। उन्हें अनेक देशों से शुभकामना सन्देश प्राप्त हो रहे हैं।"[3] रसगंधर्व की कथावस्तु बंदीगृह के आसपास केन्द्रित है,जो व्यवस्था रूपी कैदखाने का प्रतीकात्मक संकेत है। उस जेल में बंद चार कैदी 'अ', 'ब', 'स', 'द' कैदी के रूप में आम जनता का प्रतीक है। अंत में शापित गन्धर्व की पुराण कथा भी जुड़ जाती है। जो कभी अप्सराओं से यानी सुविधापंथी नीतियों से अनैतिक संबंध स्थापित करने की वजह से इंद्र के अभिशाप द्वारा मनुष्य बना दिए गए थे। इस नाटक के कथानक में समसामयिक जीवन की समस्याओं को लोक कथाओं के माध्यम से उद्घाटित किया गया है। लोककथाओं और लोकरुढियों के सफल प्रयोग से 'रसगंधर्व' लोकधर्मी 'बुलबुल सराय' मणिमधुकर कि एक विशिष्ट रचना है। इसमें एक ओर लोक जीवन की रंगारंग झाकियाँ एवं जीवनोल्लास है वही दूसरी ओर समसामयिक जीवन–यर्थाथ कि व्यंग्यात्मक प्रस्तुति भी है। प्रसिद्ध रंग चिन्तक गिरीश रस्तोगी ने इस नाटक की लोकधर्मिता पर महत्व टिप्पणी करते हुए लिखा है– "नट–नटी, तुकबंदी, संवादी की लय, कहीं–कहीं व्यर्थ का शाब्दिक खिलवाड, बात से बात निकल आना या निकलते जाना, गीत–नृत्य, बीच–बीच में लोककथाओं का सहारा मणि–मधुकर का अत्यंत जाना पहचाना संसार है जो यहाँ भी है।"[4]

बुलबुल सराय के कथानक में सराय जहाँ संसार का प्रतीक है वहीं बुलबुल प्रेम, करुणा, दया आदि मानव मूल्यों की, राजा प्रचंडसेन तथा मायासुर की कथाएँ यर्थाथ और कल्पना का सम्मिक्षरण है। व्यवस्था और आम आदमी के सन्दर्भ राजनीतिक–सामाजिक विसंगतियाँ, शोषण जहाँ समसामयिक यर्थाथ को उजागर करता है वहीं 'मायासुर' सत्ता–तंत्र का प्रतीक है जिसके संरक्षक हैं–मंत्री,अधिकारी और उनके चमचे। 'ई' का मायासुर के बंधन में उपभोग की एक वस्तु की तरह रहना इस कथाक्रम को व्यंग का रूप देता है। बीच–बीच में लोकनाटकों की तरह नट–नटी वार्तालाप, नोंक–झोंक भी चलते है। वस्तु–संयोजन में 'पुतली–कठपुतली' का प्रयोग रचनाकार की लोकधर्मी चेतना का प्रमाण है।

मणिमधुकर का तीसरा नाटक 'दुलारीबाई' भी सामाजिक–राजनीतिक चेतना को प्रखरता के साथ प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही भारतीय जनजीवन में व्याप्त रुढियों और संस्कारगत दुर्बलताओं पर तीखा प्रहार भी किया गया है। एक प्रकार से लेखक ने उन पुश्तैनी 'जूतो' का वर्णन किया है जो जीवन में विडम्बनापूर्ण स्थितियों का निर्माण करते है। नाटक का बहुत बड़ा घटनाचक्र अत्यंत मनोरंजक ढंग से दुलारीबाई के पुश्तैनी जूतों के इर्द– गिर्द घूमता है "तुम चाहो कितनी भी बुराई करो, दो कोड़ी के ! मैं इन शानदार जूतों को नहीं छोडूंगी।"[5] आज भी हमारा समाज परंपरागत रुढियों, अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ है।

मणिमधुकर ने अपने नाटकों के लिए जिस भाषा का चयन किया है वह बोलचाल के स्तर से भी सामान्य यानी लोकभाषा है। रसगंधर्व नाटक में, नाटककार ने देशज दृलोक भाषा का प्रयोग असंगत जीवन स्थितियों को उभारने एवं पात्रों की मनःस्थिति को प्रकट करने हेतु किया है–

"अ : तुम लोग कितने स्वार्थी, कितने ओछे, कितने पोचे हो।

द : पोचे हो !

अ : तुम इन बुस्सी–बेकार रोटियों पर मंगते की तरह टूट पड़ते हो बेशरम।"[6]

दुलारीबाई नाटक ग्रामीण लोक परिवेश से जुडी है। इस कारण ग्रामीण व भदेस शब्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है,जैसे–'चबर–चबर', 'माथा', 'खटर–पटर',

छोरा–छोरी, माल–मत्ता, ससुरे, जुगाड़ आदि देशज और राजस्थानी लोक में प्रचलित शब्दों की बहुलता रचनाकार की लोकधर्मिता को उद्घाटित करता है। उनके नाटकों में लोकमुहावरे, लोकधुन, लोक दृआचरण अपनी पूरी रंगत के साथ उपस्थित है–

"दुलारीबाई है, ये दुलारी बाई !
बिल्ली जैसी चौकन्नी फिरती है दौड़ी–दौड़ –
निन्नावें के फहर में पकडे दांत के कौड़ी–कौड़ी–
हम तो काठ के पुतले–
जोंक कहे कोइ इसको या फिर खटमल की मौसी
दो पइसे का नफा हो तो पैदल पहुंचे चंदौसी।"[7]

मणिमधुकर ने लोकगीत शैली में गीत–प्रयोग के माध्यम से न केवल लोक कि समस्याओं, आकांक्षाओं और अन्य संघर्षशीलता को उद्घाटित किया है बल्कि समकालीन महानगरीय त्रासदी एवं राजनीतिक विद्रूपता पर भी करारा व्यंग किया है। ये गीत वर्त्तमान राजनीतिक विडम्बनाओं को उजागर किया है–

"बाँट के खाओं
छाँट के खाओ
फाँट के खाओ
लेकिन कभी किसी को न डांट के खाओ।"[8]

प्रतीकात्मकता उनकी भाषा का महत्वपूर्ण अंग है,जैसे–कनखजूरा (अफसर), कैंची मास्टर (दर्जी), चुने का चींचडा (राहगीर), गुलाब (पूंजीपति), टिड्डा (गरीब) आदि। इस तरह के अनेक प्रतीक शब्द उनके नाटकों में प्रयुक्त हैं। मणिमधुकर के नाटकों में प्रयुक्त भाषा के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वे शब्दों के अर्थ पर कम, संदर्भ और प्रभाव पर अधिक बल देते है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि, मणिमधुकर ने अपने नाटको में लोक और लोकतत्त्व को केंद्र में रखते हुए प्रयोगधर्मिता को गहराई से आत्मसात किया है। लोकलय, लोकधुन और लोकशब्द उनके नाटकों की एक विशेष पहचान है। लोक को समकालीन यर्थाथ से जोड़कर, युगीन समस्याओं, असंगत व्यवस्था, विद्रूपताओं को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। अतः मणिमधुकर एक लोकधर्मी नाटककार है। उन्होंने अपने नाटकों के कथावस्तु, पात्र, देशकाल, वातावरण, भाषा, संवाद–योजना, मंच–सज्जा आदि को लोकतत्वों से जोड़ा है तथा आम आदमी के पक्ष में खड़ा होकर, सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियों पर लोकशैली में करार प्रहार किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, संपादक–डा० नरेन्द्र मोहन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ० –250*
2. *भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक,आचार्य हजारी प्रसाद , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971, पृ–25*
3. *रसगंधर्व, मणिमधुकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1978, पृ०–16*
4. *समकालीन नाटककार, गिरीश कुमार रस्तोगी, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ–179*
5. *दुलारीबाई, मणिमधुकर, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1981, पृ–21*
6. *रसगंधर्व , पृ–55*
7. *दुलारीबाई, पृ–9*
8. *बोलो बोधिवृक्ष, मणिमधुकर, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1991, पृ– 29*